# आर्द्रा

मोहन राकेश

हिन्दी ADDA

# आर्द्रा

https://www.hindiadda.com/ardra/

बचन को थोड़ी ऊँघ आ गयी थी, पर खटका सुनकर वह चौंक गयी। इरावती ड्योढ़ी का दरवाज़ा खोल रही थी। चपरासी गणेशन आ गया था। इसका मतलब था कि छः बज चुके थे। बचन के शरीर में ऊब और झुँझलाहट की झुरझुरी भर गयी। बिन्नी न रात को घर आया था, न सुबह से अब तक उसने दर्शन दिये थे। इस लडक़े की वजह से ही वह यहाँ परदेस में पड़ी थी, जहाँ न कोई उसकी ज़बान समझता था, न वह किसी की ज़बान समझती थी। एक इरावती ही थी जिससे वह टूटी-फूटी हिन्दी में बात कर लेती थी, हालाँकि उसकी पंजाबी हिन्दी और इरावती की कोंकणी हिन्दी में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ था। जब इरावती भी उसका सीधे-सादे शब्दों में कही साधारण-सी बात को न समझ पाती, तो वह बुरी तरह अपनी विवशता के खेद से दब जाती। और इस लडक़े को रत्ती चिन्ता नहीं थी कि माँ किस मुश्किल से दिन काटती है और किस बेसब्री से इसका इन्तज़ार करती है। मन में आया, तो घर आ गये, नहीं तो जहाँ हुआ पड़ रहे।

एक मादा सूअर अपने छः बच्चों के साथ, जो अभी नौ-नौ इंच से बड़े नहीं हुए थे, कुएँ की तरफ़ से आ रही थी। तूत के बुड्ढे पेड़ के पास पहुँचकर उसने हुँफ़्-हुँफ़् करते हुए दो-तीन बार नाली को सूँघा और फिर पेड़ के नीचे कीचड़ में लोटने लगी। उसके नन्हे आत्मज उसके उठने की राह देखते हुए वहीं आसपास मँडराते रहे।

दिन-भर गली में यही सिलसिला चलता था। आसपास के सभी घरों ने सूअर पाल रखे थे। उस बस्ती में लोगों के दो ही धन्धे थे-सूअर पालना और नाजायज़ शराब निकालना। ये दोनों चीज़ें उनके रोज़ के खान-पान में शामिल थीं। बस्ती सान्ताक्रुज़ हवाई अड्डे से कुल आधा मील के फासले पर थी, पर पुलिस की आँख वहाँ नहीं पहुँचती थी। मोनिका का बाप जेकब गली में ही भट्ठी लगाता था। वह गली का सबसे बड़ा पियक्कड़ था और अक्सर पीकर गाता हुआ गली में चक्कर लगाया करता था : "ओ दैट आई हैड विंग्ज़ ऑफ़ एंजल्स, हियर टु स्प्रेड एंड हैवनवर्ड फ्लाऽऽई...।"

उस वक़्त भी वह रोज़ की तरह कुएँ के मोड़ के पास से लडख़ड़ाता हुआ आ रहा था। उसके लफ़्ज बचन की समझ से बाहर थे, मगर उसकी आवाज़ ही उसके दिल में दहशत पैदा करने के लिए काफ़ी थी। "ओ दैट आई हैड विंग्ज़ ऑफ़ एंजल्स, हियर टु स्प्रेड एंड हैवनवर्ड फ्लाऽऽई! आई वुड सीक द गेट्स ऑफ़ सायन, फ़ार बियांड द स्टाऽऽरी स्काऽऽई! होइ-हो! हो-हो-होऽऽ! ओ दैट आई हैड विंग्ज़ ऑफ़ एंजल्स...!"

उसका चौड़ा चौकोर चेहरा वैसे ही भयानक था-अपने ढीले-ढाले काले सूट में वह और भी भयानक दिखाई देता था। चेचक के दागों और झुर्रियों से भरा उसका चेहरा दीमक खाई लकड़ी की तरह जान पड़ता था। दूर से ही उस आदमी की आवाज़ सुनकर बचन का दिल धडक़ने लगता और वह अपना दरवाज़ा बन्द कर लेती। उसने कितनी ही बार बिन्नी से कहा था कि वह उस बस्ती से मकान बदल ले, मगर वह हर बार यह कहकर टाल देता था कि बम्बई की और किसी बस्ती में बीस रुपये महीने में मकान नहीं मिल सकता। बचन डर के मारे बिन्नी के आने तक लालटेन की लौ भी ज़्यादा ऊँची नहीं करती थी। अँधेरा बहुत बोझिल महसूस होता था, मगर वह मन मारे बैठी रहती थी।

लालटेन की चिमनी नीचे से आधी काली हो गयी थी। बचन को उसे साफ़ करने का उत्साह नहीं हुआ। अँधेरा होने लगा, तो उसने जैसे फ़र्ज़ पूरा करने के लिए उसे जला दिया और एक अज्ञात देवता के सामने हाथ जोडऩे की प्रक्रिया पूरी करके घुटनों पर बाँहें रखे वहीं बैठी रही। सामने मोढ़े के नीचे लाली का कार्ड रखा था। वह अक्षरों की बनावट से परिचित थी, पर हज़ार आँखें गड़ाकर भी उनका अर्थ नहीं जान सकती थी। बिन्नी के सिवा हिन्दी की चिट्ठी पढऩे वाला वहाँ कोई नहीं था, हालाँकि बिन्नी से चिट्ठी पढ़वाकर भी उसे सुख नहीं मिलता था। वह लाली की चिट्ठी इस तरह पढक़र सुनाता था जैसे वह उसके बड़े भाई की चिट्ठी न होकर गली के किसी ग़ैर आदमी के नाम आयी किसी नावाकिफ़ आदमी की चिट्ठी हो। दो मिनट में ही वह पहली सतर से लेकर आख़िरी सतर तक सारी चिट्ठी गुन-गुन करके बाँच देता था, और फिर उसे कोने में फेंककर इधर-उधर की हाँकने लगता था। हर बार उससे चिट्ठी सुनकर वह कुढ़ जाती थी। पर बिन्नी उसे नाराज़ देखता, तो तरह-तरह की बातें बनाकर ख़ुश कर लिया करता था।

उसे ख़ुश होते देर नहीं लगती थी। बिन्नी इतना बड़ा होकर भी जब-तब उससे बच्चों की तरह लाड़ करने लगता था। कभी उसकी गोदी में सिर रखकर लेट जाता, और कभी उसके घुटनों से गाल सहलाने लगता। ऐसे क्षणों में उसका दिल पिघल जाता और वह उसके बालों पर हाथ फेरती हुई उसे छाती से लगा लेती।

"माँ, तेरा छोटा लडक़ा कपूत है न?" बिन्नी कहता।

"हा-ह", वह हटकने के स्वर में कहती, "तू कपूत है? तू तो मेरा चन्न है," और वह उसका माथा चूम लेती।

लेकिन अक्सर वह बहुत तंग पड़ जाती थी। बहुत-सी रातें ऐसी गुज़रती थीं जब वह घर आता ही नहीं था। अँधेरे घर की छत उसे दबाने को आती थी और वह सारी-सारी

रात करवटें बदलती रहती थी। ज़रा आँख झपक जाती, तो उसे बुरे-बुरे सपने दिखाई देने लगते। इसलिए कई बार कोशिश करके आँखें खुली रखती थी।

और बिन्नी आता, तो अपने में ही उलझा हुआ और व्यस्त-सा। वह समझ नहीं पाती थी कि उस लडक़े को किस चीज़ की व्यस्तता रहती है। जहाँ तक कमाने का सवाल था, वह महीने में मुश्किल से साठ-सत्तर रुपये घर लाता था। कभी दस रुपये ज़्यादा ले आता, तो साथ अपनी माँगें सामने रख देता-'इस बार माँ, दो कमीज़ें सिल जाएँ और एक बढिय़ा-सा जूता ले लिया जाए।' उसकी बातों से बचन के होंठों पर रूखी-सी मुस्कराहट आ जाती थी। दस रुपये में ही उसे दुनिया भर का सामान चाहिए! और जब वह साठ से भी कम रुपये लाता, तो महीने भर की बड़ी आसान-सी योजना उसके सामने पेश कर देता-'दूध-सब्ज़ी का नागा। दाल, प्याज़, ख़ुश्क फुलके और बस!'

वह जानती थी कि ये रुपये भी वह ट्यूशन-ऊशन करके ले आता है, वरना सही माने में वह बेकार ही है। उसके दिल में बड़े-बड़े मनसूबे ज़रूर थे और उनका बख़ान करते वक़्त वह छोटा-मोटा भाषण दे डालता था। मगर उन मनसूबों को पूरा करने के लिए जिस दुनिया की ज़रूरत थी, वह दुनिया अभी बनी नहीं थी। वह जोश से उँगलियाँ नचा-नचाकर कहता, "माँ, जब वह दुनिया बन जाएगी, तो तुझे पता चलेगा कि तेरा नालायक बेटा कितना लायक है!"

"चुप कर ख़सम खाना!" वह प्रशंसा की नज़र से उसे देखती हुई कहती, "बड़ा लायक एक तू ही है।"

"माँ, मेरी लियाकत मेरे पेट में बन्द है!" वह हँसता, "जिस तरह हिरन के पेट में कस्तूरी बन्द होती है न, उसी तरह। जिस दिन वह खुलकर सामने आएगी, उस दिन तू अचम्भे से देखती रह जाएगी।"

उसे बिन्नी की बातें सुनकर गर्व होता था। मगर जब वह लडक़ा बहुत गुमसुम और बन्द-बन्द-सा हो रहता, तो उसे उलझन होने लगती थी।

बिन्नी के साथ उसके अजीब-अजीब दोस्त घर आया करते थे। उन लोगों का शायद कोई ठौर-ठिकाना था ही नहीं,क्योंकि वे आते तो दो-दो दिन वहीं पड़े रहते थे, और खाने-पीने में किसी तरह का शरम-लिहाज़ नहीं बरतते थे। तवे से उतरती रोटी के लिए जब वे आपस में छीना-झपटी करने लगते, तो उसे मन में बहुत ख़ुशी का अनुभव होता। मगर अक्सर उसकी दाल की पतीली ख़ाली हो जाती, और यह देखकर कि उन लोगों की भूख अभी बनी है, उसे घर की ग़रीबी अपना अपराध प्रतीत होती। ऐसे समय

उसकी आँखों में नमी भर जाती और वह ध्यान बँटाने के लिए दूसरे काम करने लगती। वे लोग रू$खी नमकीन रोटियों की फ़रमाइश करते, तो वह चुपचाप उन्हें बना देती। मगर उन्हें खिलाने का उसका सारा उत्साह तब तक समाप्त हो चुका होता।

और उन लोगों के बहस-मुबाहिसे कभी समाप्त नहीं होते थे। वे सब ज़ोर-ज़ोर से बोलते थे और इस तरह आपस में उलझ जाते थे जैसे उनकी बहस पर ही धरती और ईश्वर का दारोमदार हो। कई बार वे इतने गरम हो जाते थे कि लगता था अभी एक-दूसरे को नोंच लेंगे, मगर सहसा उस उत्तेजना के बीच से एक कहकहा फूट पड़ता और वे उठ-उठकर एक-दूसरे से बगलगीर होने लगते। बिन्नी बचपन में बहुत ख़ामोश लडक़ा था। अब उसे इस तरह हुड़दंग करते देखकर उसे हैरानी होती थी। कई-कई घंटे घर में तूफ़ान मचा रहता था। उसके बाद फिर ख़ामोशी छा जाती जो बहुत ही अस्वाभाविक और दम घोंटनेवाली महसूस होती। जब बिन्नी दो-दो दिन घर न आता, तो उस ख़ामोशी के ओर-छोर गुम हो जाते और वह अपने को सदा से एक गहरे शून्य में घिरी हुई महसूस करती।

अँधेरा गहरा होने लगा और मोनिका का बाप जाकर अपने कमरे में बन्द हो गया तो उसने फिर दरवाज़ा खोल लिया। मादा सूअर और उसके बच्चे अब सामने घर के अहाते में डेरा जमाए थे और एक मोटा सूअर नाली के पास हुँफ़-हुँफ़ कर रहा था। हवा तेज़ हो गयी थी, और तूत के बुड्ढे पेड़ की डालियाँ बुरी तरह हिल रही थीं। आसमान का जो छोर दिखाई देता था, वहाँ रह-रहकर बिजली चमक जाती थी। दो महीने से प्राय: रोज वर्षा हो रही थी। घर से कुएँ तक गली में कीचड़ ही कीचड़ रहता था। इस कीचड़ के लिए बचन को लडक़े-लड़कियों की उन टोलियों से शिकयत थी जो वर्षा शुरू होने से पहले आधी-आधी रात तक गली में घूमती हुई ऊँचे स्वर में ईश्वर से पानी बरसाने के लिए प्रार्थना किया करती थीं। अब जैसे उन्हीं की वजह से सारा दिन गली में चिपड़-चिपड़ होती रहती थी।

ड्योढ़ी के दरवाज़े पर फिर दस्तक हुई। इरावती ने दरवाज़ा खोल दिया और बिन्नी मुस्कराता हुआ उधर से अन्दर आ गया।

"आगे की तरफ़ बहुत कीचड़ है भाभी, माफ़ करना," कहता हुआ वह अपने कमरे में आ गया। इरावती ने उस पर एक शिकायत की नज़र डालकर दरवाज़ा बन्द कर लिया। उसके सिर के बाल बुरी तरह उलझे थे और कुरता-पाज़ामा बहुत मुचड़ गया था। ज़ाहिर था कि वह सुबह जिस हाल में सोकर उठा था, अब तक उसी हाल में था, और उसे मुँह-हाथ धोने का भी वक़्त नहीं मिला था।

"माँ, जल्दी से रोटी डाल दे, भूख लगी है!" आते ही चारपाई पर फैलते हुए उसने आदेश दिया। बचन चुपचाप अपनी जगह बैठी रही। न उठी, और न ही उसने मुँह से कुछ कहा। कुछ क्षण प्रतीक्षा करने के बाद बिन्नी ने सिर उठाया और कहा, "माँ, रोटी...।"

"रोटी आज नहीं बनी है," वह बोली, "मुझे क्या पता था कि लाटसाहब आज भी घर आएँगे कि नहीं! रात की रोटी मैंने सवेरे खायी, सवेरे की अब खायी है। मैं क्यों रोज़-रोज़ बासी रोटी खाती रहूँ? जा, किसी तन्दूर पर जाकर खा ले।"

बिन्नी हँसता हुआ चारपाई से उठ बैठा और माँ के मोढ़े के पास चला आया। "यहाँ तन्दूर है कहाँ, जहाँ जाकर खा लूँ?" वह बोला, "मेरे हिस्से की जो बासी रोटी रखी थी, वह तूने क्यों खायी? निकाल मेरी बासी रोटी..." और वह माँ का घुटना पकडक़र बैठ गया।

"मेरे पेट से निकाल ले अपनी बासी रोटी!" बचन ने आरम्भ किया मीठी झिडक़ी के रूप में, पर वाक्य समाप्त करते-करते उसकी आँखें गीली हो गयीं!

बिन्नी ने उसकी गीली आँखें नहीं देखीं। वह उठकर रोटीवाले डिब्बे के पास चला गया और बोला, "डिब्बे के रखी होगी, ज़रूर रखी होगी।"

बचन ने उसकी नज़र बचाकर आँखें पोंछ लीं। बिन्नी रोटीवाला डिब्बा लिये उसके सामने आ बैठा। डिब्बे में कटोरा-भर दाल के साथ चार रोटियाँ कपड़े में लपेटकर रखी थीं। बिन्नी ने जल्दी से एक रोटी का टुकड़ा तोड़ लिया।

"यह तो ताज़ा रोटी है!" वह टुकड़ा मुँह में ठूँसे हुए बोला।

"बासी रोटी खाने को माँ जो है!" कहकर बचन उठ खड़ी हुई। उसने पानी का गिलास भरकर उसके पास रख दिया। बिन्नी ने एक घूँट में गटागट गिलास खाली कर दिया और बोला, "थोड़ा और!"

बचन ने गिलास उठा लिया और सुराही से उसमें पानी डालती हुई बोली, "लाली का कार्ड आया है।"

"अच्छा!" कहकर बिन्नी रोटी खाता रहा। उसने कार्ड के बारे में ज़रा भी जिज्ञासा प्रकट नहीं की। बचन का दिल दुख गया। वह गिलास बिन्नी के आगे रखकर बिना एक शब्द कहे अहाते में चली गयी और चारपाई पर दरी डालकर पड़ गयी। उसका दिल उछलकर

आँखों से आने को हो रहा था, पर वह किसी तरह चेहरा सख्त किए अपने को रोके रही। थोड़ी देर में बिन्नी जूठे पानी से हाथ धोकर मुँह पोंछता हुआ अन्दर से आ गया।

"कहाँ है कार्ड?" उसने पूछा।

"कहीं नहीं है," बचन ने रुँधे स्वर में कहा और करवट बदल ली।

"अब बता भी दे न, जल्दी से सब समाचार पढ़ दूँ।"

"सो जा, मुझे कोई समाचार नहीं पढ़वाने हैं।"

"पढ़वाने क्यों नहीं हैं, मैं अभी सब सुनाता हूँ," कहकर बिन्नी अन्दर चला गया और कार्ड ढूँढक़र ले आया। साथ लालटेन भी उठा लाया। आधे मिनट में उसने सरसरी नज़र से सारा कार्ड पढ़ डाला।

"भैया की तबीयत ठीक नहीं है," वह लालटेन ज़मीन पर रखकर माँ की चारपाई के पैताने बैठ गया। बचन सहसा उठकर बैठ गयी। बिन्नी ने गुनगुन करके पहली डेढ़ी पंक्ति पढ़ी और फिर उसे सुनाने लगा। लाली ने लिखा था कि उसका ब्लड प्रेशर फिर बढ़ गया था, डॉक्टर ने उसे आराम करने की सलाह दी है। कुसुम की तबीयत अब ठीक है और उसका रंग भी लाली पर आ रहा है। उन्होंने मकान बदल लिया है क्योंकि पहला मकान हवादार नहीं था और बच्चों को वहाँ से स्कूल जाने में भी दिक्कत होती थी। अब दीवाली पास आ रही है, इसलिए बच्चे दादी माँ को बहुत याद करते हैं। उसे गये छ: महीने से ऊपर हो गये हैं, इसलिए हो सके, तो दीवाली के दिनों में आकर मिल जाए।

"इसे बाद सबकी नमस्ते है," कहकर बिन्नी ने कार्ड रख दिया।

"यह नहीं लिखा कि किस डॉक्टर का इलाज कर रहा है?"

"तू जैसे वहाँ के सब डॉक्टरों को जानती है।"

"बिन्नी ने बात अनायास कह दी थी, पर बचन का मन छिल गया। उसके चेहरे पर फिर कठिनता आ गयी।

"मैं कल वहाँ चली जाती हूँ," उसने कहा।

"तू चली जाएगी तो मैं यहाँ अकेला कैसे रहूँगा? मेरी रोटी...?"

बचन ने वितृष्णा से उसे देखा, जिसका मतलब था कि तेरी रोटी क्या उसकी जान से ज़्यादा प्यारी है?

"तू कौन घर की रोटी पर रहता है," मुँह से उसने इतना ही कहा।

"भैया का ब्लड प्रेशर कोई नयी बीमारी तो है नहीं..." बिन्नी फिर कहने लगा।

"तू ये बातें रहने दे, मैं कल यहाँ से जा रही हूँ।" बचन ने उसकी बात को बीच में ही काट दिया। कुछ क्षण दोनों ख़ामोश रहे। फिर बिन्नी 'अच्छा' कहकर उसके पास से उठ गया।

अगले दिन सुबह वह 'अभी थोड़ी देर में आता हूँ' कहकर घर से चला गया और दोपहर तक लौटकर नहीं आया। बचन का किसी काम में मन नहीं लग रहा था। फिर भी उसने किसी तरह खाना बनाया और घर के सब छोटे-मोटे काम पूरे किये। बिन्नी की चारों-पाँचों कमीज़ें लकर उनके टूटे बटन भी लगा दिये। फिर अपनी दरी और कपड़े एक जगह इकट्ठे कर लिये। यह तय नहीं था कि वह उस दिन वहाँ से आ पाएगी या नहीं। बिन्नी सुबह उसे निश्चित कुछ बताकर नहीं गया था। सम्भव था कि वह रात तक घर आये ही नहीं। रात को भी उसके आने का भरोसा नहीं था। यह भी डर था कि बिन्नी के पास किराये लायक पैसे शायद हों ही नहीं। उस दिन महीने की उन्नीस तारीख़ थी। और उन्नीस तारीख़ को बिन्नी के पास पैसे कब रहते थे? उस हालत में उसे तीन-चार तारीख़ तक जाना टालना पड़ेगा। वह यह भी नहीं जानती थी कि दीवाली इस बार किस तारीख़ को पड़ेगी। वह सोचने लगी कि इस बीच लाली की तबीयत और ज़्यादा ख़राब हो गयी, तो? उसे काफ़ी ज़्यादा तकलीफ़ होगी, जो उसने चिट्ठी में लिखा है। नहीं वह चिट्ठी में कभी न लिखता। ऐसे में वह पन्द्रह-बीस दिन वहाँ से न जा सकी, तो?

तभी बिन्नी आ गया। उसके साथ उसका लम्बे बालोंवाला दोस्त शशि भी था, जिसकी गरदन बात करते हुए तोते की तरह हिलती थी। वह उसकी दाल का सबसे बड़ा प्रशंसक था। आते ही दाल की फ़रमाइश करता था। हमेशा की तरह वे गली से ऊँची आवाज़ में बात करते हुए आये।

"मैं तेरा टिकट ले आया हूँ," बिन्नी ने आते ही कहा, "मंगलवाड़ी से शशि को साथ लिया, और वहीं से टिकट भी ले लिया। पर तू तो अभी तैयार ही नहीं हुई...!"

"तैयार क्या होती? तू मुझसे कहकर गया था...?"

"जब रात को तय हो गया था, तो सुबह कहने की क्या ज़रूरत थी? अच्छा, अब जल्दी से तैयार हो जा। गाड़ी में दो घंटे हैं। तेरे लिए नक़द सवा बीस ख़र्च करके आया हूँ, वे भी उधार के।"

बचन को बुरा लगा कि वह बाहर के आदमी के सामने ऐसी बात क्यों कह रहा है। क्या वह नहीं जानती थी कि टिकट के लिए उसे रुपये उधार लेने पड़े होंगे? वह कब चाहती थी कि उसकी वजह से उस पर उधार चढ़े? वह उससे कह देता, तो वह बारह-चौदह दिन बाद चली जाती।

वह कुछ न कहकर अपने कपड़े दरी में लपेटने लगी।

"हट माँ, मुझे बिस्तर बाँधना आता भी है?" बिन्नी आगे बढ़ आया, "उल्टी-सीधी रस्सी बाँधेगी, और कहीं से बिस्तर को मोटा कर देगी, कहीं से पतला। हट जा; मैं अभी एक मिनट में बाँध देता हूँ। ऐसा बिस्तर बँधेगा कि वहाँ पहुँचकर भी तेरा खोलने को जी नहीं करेगा।"

"तू रोटी खा ले, मैं बिस्तर बाँध लेती हूँ," बचन की आँखें भर आयीं।

"रोटी खानेवाला आदमी मैं साथ लाया हूँ," वह माँ के लपेटे कपड़ों को फिर से फैलाता हुआ बोला, "यह इसीलिए आया है कि तू चली जाएगी, तो तेरे हाथ की दाल फिर इसे कहाँ मिलेगी?"

बचन की गीली आँखों में हल्की मुस्कराहट भर गयी।

"इसे भी खिला दे," वह बोली, "मैं अभी दो फुलके और बना देती हूँ।"

"और बनाने की ज़रूरत नहीं। जो बने हैं, वही खा लेंगे।"

"पहले मैं खा लूँ, फिर जो बचें वे इसे दे देना।" कहकर शशि गरदन उठाकर हँस दिया। बिन्नी बिस्तर बाँधता रहा। वह उन दोनों के लिए रोटी डालकर ले आयी।

"तैयार!" बिन्नी ने हाथ झाड़े और शशि के साथ खाना खाने में जुट गया।

"माँ, अपने लिए रोटी रख लेना और जितनी बचे वह सब हमें ला देना।" शशि दाल सुडक़ता हुआ बोला। वे दोनों खा चुके, तो बचन ने जल्दी से बरतन समेट लिये।

"अब माँ, तू भी जल्दी से खा ले।" बिन्नी ने कुल्ला करके हाथ पोंछते हुए कहा।

"मैंने खा ली है।"

"कब खा ली है?" बिन्नी ने पास जाकर उसके कन्धे पकड़ लिये।

"तेरे आने से पहले।"

"झूठी!"

"सच, मैंने खा ली है।"

"आगे तो कभी इतनी जल्दी नहीं खाती।"

"आज खा ली है।...घर से जाना था न! तुम दोनों तो भूखे नहीं रहे?"

"एक-चौथाई भूखे रह गये!" शशि ने डकार लेकर तौलिये से मुँह पोंछा और उसे खूँटी पर टाँगकर हँसने लगा।

स्टेशन पर उसे गाड़ी में बिठाकर वे दोनों प्लेटफार्म पर टहलते रहे। रात को भी उसने ठीक से नहीं खाया था,इसलिए भूख के मारे उसका सिर चकरा रहा था। वह जानती थी कि बिन्नी को पता है उसने कुछ नहीं खाया। इसीलिए उसके मना करने पर भी आधा दर्जन केले लेकर रख गया था। वह एक बार कह चुकी थी कि उसे भूख नहीं है, इसलिए केले वैसे ही रखे थे। बिन्नी हठ से कहता, तो वह खा लेती। मगर बिन्नी और शशि टहलते हुए दूर चले गये थे। शायद अब भी उनमें बहस चल रही थी। उसकी समझ में नहीं आता था कि ये लोग इतनी बहस क्यों करते हैं। हर वक़्त बहस, बहस, बहस! बहस का कोई अन्त भी होता है! जैसे सारी दुनिया के झगड़े इन्हीं को निपटाने हों! फटे हाल रहेंगे, सेहत का ज़रा ध्यान नहीं रखेंगे, और बातें, जैसे दुनिया की दौलत के यही मालिक हों,और उसे बाँटने की समस्या इन्हीं के सिर पर आ पड़ी हो।

वे दोनों प्लेटफार्म के उस सिरे तक होकर वापस आ रहे थे। वह उनके चेहरे देख रही थी। माथे पर सलवटें डाले वे हाथ हिला-हिलाकर बातें कर रहे थे। फिर भी वे बच्चे-से दीखते थे। उस समय शायद वे यह भी भूल गये थे कि वे उसे गाड़ी पर छोडऩे आये हैं। सहसा गार्ड की सीटी सुनकर वे उसके डिब्बे के पास आ गये। मगर वहाँ आकर भी उनकी बहस चलती रही-करघे का काम रुक जाएगा तो कितने आदमी बेकार हो जाएँगे। इसलिए इच्छा यही है कि मालिकों से बात चलती रहे और कामगार काम जारी रखें। बचन सोचने लगी कि ये लोग कभी अपने काम के बारे में बात क्यों नहीं करते? अपनी बेकारी की चिन्ता इन्हें क्यों नहीं सताती?

गाड़ी चलने लगी, तो बिन्नी को जैसे उसके पास होने का होश हुआ और उसका हाथ पकडक़र उसने कहा, "अच्छा माँ...।"

बचन के होंठों पर रूखी-सी मुसकराहट आ गयी। उसने बारी-बारी से उन दोनों के सिर पर हाथ फेरा।

"तू कब लौटकर आएगी?"

"जब भी तू बुलाएगा।"

गाड़ी ने रफ़्तार पकड़ ली। वह देर तक खिड़की से सिर निकालकर उन्हें देखती रही। दोनों हाथ में हाथ डाल गेट की तरफ़ जा रहे थे। उनकी बहस शायद अब भी चल रही थी।

बचन को घर आये पन्द्रह दिन हो गये थे।

"बिन्नी की चिट्ठी नहीं आयी?" उसने लाली के कमरे के बाहर रुककर पूछा। लाली से सवाल पूछने में उसका स्वर थोड़ा दब जाता था। वह बेटा बड़ा होते-होते इतना बड़ा हो गया था कि वह अपने को उससे छोटी महसूस करने लगी थी।

"आ जा, माँ," लाली ने काग़ज़ों से आँखें उठाकर कहा, "चिट्ठी उसकी आज भी नहीं आयी। न जाने इस लडक़े को क्या हो गया है!"

"तू काम कर, मैं जा रही हूँ," वह बोली, "सिर्फ़ चिट्ठी का ही पूछने आयी थी।"

वह बरामदे से होकर अपने कमरे में आ गयी। जानती थी कि लाली का समय कीमती है। वह आधी-आधी रात तक बैठकर दूसरे दिन के केस तैयार करता है। मुवक्किलों की वजह से उसका खाने-पीने का भी समय निश्चित नहीं रहता। इधर छः महीने में उसकी व्यस्तता पहले से कहीं बढ़ गयी थी। नये घर में आ जाने से जगह का तो आराम हो गया था, मगर कचहरी पहले से भी दूर हो गयी थी। लाली की व्यस्तता के कारण कई बार वह सारा-सारा दिन उससे बात नहीं कर पाती थी। रात को वह बैठक से उठकर आता, तो सीधा अपने सोने के कमरे में चला जाता। दिन भर की थकान के बाद वह उसके आराम में खलल नहीं डालना चाहती थी। सवेरे वह कुसुम से पूछ लेती कि रात को उसकी तबीयत कैसी रही है। कुसुम संक्षेप में उसे बता देती।

"सोने से पहले उसके सिर में बादाम रोगन डाल दिया कर," वह कुसुम से कहती।

"मैं कई बार कहती हूँ, पर ये डलवाते ही नहीं," कुसुम जैसे रटा-रटाया उत्तर दे देती।

"मुझे बुला लिया कर, मैं आकर डाल दिया करूँगी।"

"डालने को नौकर है,पर ये डलवाते ही नहीं।"

वह जानती थी कि सिर में बादाम रोगन डलवाने के लिए लाली को किस तरह राज़ी किया जा सकता है। मगर कुसुम अपने को लाली की ज़्यादा अन्तरंग समझती थी, और उसके सुझावों से सहमति प्रकट करती हुई भी करती वही थी जो उसके अपने मन में होता था। कुसुम जिस शिष्टता और कोमलता से बात करती थी, उससे बचन को लगता था कि वह उस घर में केवल मेहमान है। दिन-भर उसके करने के लिए वहाँ कोई काम नहीं होता था। खाना बनाने के लिए एक नौकर था, ऊपर का काम करने के लिए दूसरा। उनके काम की देखभाल के लिए कुसुम थी। बचन जब भी कोई काम करने के लिए कहती, तो कुसुम झट उसे मना कर देती-नौकर के रहते अपने हाथ से काम करने की क्या ज़रूरत है? यही बात लाली भी कह देता था-माँ, तू काम करेगी, तो घर में दो-दो नौकर किस लिए हैं?

बचन सोचती कि काम करने के लिए नौकर हैं, और देखभाल के लिए कुसुम है, फिर घर में उसका होना किसलिए है? सवेरे पाँच बजे से रात के दस बजे तक वह क्या करे? पन्द्रह दिन पहले जब वह आयी ही थी, तो बच्चे उसे घेरे रहते थे। उन्हें दादी माँ से हज़ारों बातें कहनी और शिकायतें करनी थीं। मगर चार दिन में ही उनके लिए उसकी नवीनता समाप्त हो गयी थी। उनकी अपनी छोटी-छोटी व्यस्तताएँ थीं, जिनमें उनका समय बँटा हुआ था। अब भी कभी-कभी कुमुम ज़रूर उसके पास आ जाती थी, और उसके कमरे में एक तरफ़ ख़ामोश खेलती रहती थी। उसे शायद दादी माँ इसलिए अच्छी लगती थी कि उसकी माँ दोनों भाइयों को ज़्यादा प्यार करती थी...।

बचन कमरे में आकर चारपाई पर लेट गयी। मन ताने-बाने बुनने लगा। बिन्नी ने अभी तक चिट्ठी क्यों नहीं लिखी? वहाँ अँधेरे घर में इस वक़्त वह अकेला सोया होगा। रोटी का जाने उसने क्या प्रबन्ध किया है? उसने चलते वक़्त उससे पूछा भी नहीं कि वह पीछे कैसे रहेगा, कहाँ से रोटी खाएगा? उसके पास रहते वह तन-बदन की होश भूला रहता था, अब जाने उसकी क्या हालत होगी? चिट्ठी लिख देता, तो कुछ तो तसल्ली हो जाती। मगर उसे चिट्ठी लिखने की याद भी आएगी?

कमरे की खिड़की खुली थी और दूर तक खुला आकाश दिखाई दे रहा था। खिड़की से दिखाई देते उन नक्षत्रों की स्थितियों से वह परिचित थी। उन्हीं नक्षत्रों को वह बम्बई

की उस मनहूस बस्ती के ऊपर भी झिलमिलाते देखा करती थी। यहाँ से वे उसे तिरछे कोण से दिखाई देते थे, वहाँ वह अहाते में लेटकर उन्हें ठीक अपने ऊपर देखा करती थी। उसी तरह लेटी हुई वह बिन्नी की आहट की प्रतीक्षा करती थी। हुँफ़्-हुँफ़् की आवाज़ें पास आतीं, और दूर चली जाती थीं। फिर दूर से फटे गले की बेहूदा आवाज़ सुनाई देने लगती थी, "ओ डैडाई है डिंवजो फेंजल...।" उस आवाज़ से वह कितनी नफ़रत करती थी! यहाँ इस एकान्त बँगले में आसपास से कोई आवाज़ नहीं आती थी। नौ-साढ़े नौ बजे बच्चों के सो जाने के बाद बिलकुल ख़ामोशी छा जाती थी। सिर्फ़ रंगीलाल के बरतन मलने या चौका धोने की ही आवाज़ सुनाई देती थी।

उसने करवट बदल ली कि किसी तरह नींद आ जाए। नींद न आना रोज़ की बात हो गयी थी। कहाँ दस बजे से ही उसकी आँखों में नींद भर जाती थी, और कहाँ अब वह ग्यारह, बारह और एक के घंटे गिनती रहती थी। 'जाने क्यों?'वह सोचती और करवटें बदलती रहती।

रात को वह देर से सोई, मगर सुबह जल्दी उठ गयी।

उठने पर उसका दिल रात से ज़्यादा अस्थिर और अशान्त था। इतना बड़ा पहाड़-सा दिन और उसके बाद फिर वैसी ही रात! उस लम्बे खालीपन की कल्पना से एक बड़ा शून्य उसके अन्तर को घेरे था। आकाश में चिडियों के झुंड उड़े जा रहे थे। रसोईघर में रंगी स्टोव में हवा भर रहा था। उसे साहब के लिए बेड-टी ले जानी थी। बम्बई में सुबह जब वह कमरे में बाल्टी रखकर नहा रही होती, तो बिन्नी बाहर से चाय की माँग करने लगता था। इससे उसके भजन में बाधा पड़ती थी और उसे बहुत उलझन होती थी। मगर वह चुपचाप उसके लिए चाय बना देती थी।...लेकिन आज उसे इस बात की उलझन हो रही थी कि उसका भजन में मन क्यों नहीं लगता। अब जबकि भजन के लिए पूरी विद्या, पूरा समय, उसके पास था, तो आसन पर बैठने से ही वह क्यों जी चुराती थी?

कुछ देर बरामदे में खड़ी होकर वह सूर्योदय के सुनहले रंग को देखती रही। क्षितिज के एक कोने से दूसरे कोने तक झिलमिलाती नयी धूप धीरे-धीरे निखार पर आ रही थी। लगता था जैसे मिट्टी में बन्द उजाला फूटकर बाहर आने के लिए संघर्ष कर रहा हो। धूप की बढ़ती झलक से हर क्षण ऐसा ही आभास होता था। उसने बरामदे से उतरकर पूजा के लिए कुछ गेंदे के फूल चुन लिये और रसोईघर में चली गयी।

रंगी स्टोव से केतली उतारकर चायदानी में पानी डाल रहा था। उसने अपने आँचल के फूल आले में डाल दिये। रंगी ट्रे उठाकर चलने लगा, तो उसने ट्रे उसके हाथ से ले ली।

"रहने दे, मैं ले जाती हूँ।" और वह ट्रे लिये हुए लाली के कमरे की तरफ़ चल दी।

"माँ जी, आप रहने दीजिए, साहब मुझ पर नाराज़ होंगे," रंगी ने पीछे से संकोच के साथ कहा।

"इसमें उसके नाराज़ होने की क्या बात है? मैं तेरे कहने से थोड़े ही ले जा रही हूँ?" और वह थोड़ा खाँसकर लाली के कमरे में चली गयी।

लाली कम्बल ओढक़र बिस्तर में बैठा था। कुसुम अभी सो रही थी। लाली के हाथ में कुछ काग़ज़ थे जिन्हें वह ध्यान से पढ़ रहा था। उसने यह नहीं देखा कि चाय लेकर माँ आयी है। बचन ने ट्रे मेज़ पर रख प्याली में चाय बनायी और उसके पास ले गयी। लाली ने जब चाय के लिए हाथ बढ़ाया, तो उसने आश्चर्य से देखा कि प्याली लिये माँ खड़ी है।

"माँ, तू?" उसने आश्चर्य के साथ कहा।

बचन ने प्याली उसके हाथ में दे दी। उसने पहली बार ठीक से देखा कि लाली के बाल कनपटियों के पास से कितने सफ़ेद हो गये हैं। चश्मा उतार देने से उसकी आँखों के नीचे गहरे गड्ढे नज़र आ रहे थे। लाली ने काग़ज़ रखकर चश्मा लगा लिया।

"रंगी और नारायण क्या कर रहे हैं?" उसने पूछा।

"नारायण दूध लाने गया है," वह बोली, "रंगी रसोईघर में है।"

"तो उससे नहीं आया जाता था? तू सुबह-सुबह उठकर चाय लाये, वाह! इससे अच्छा है मैं आप ही बनाकर पी लूँ।"

"तू ज़रूर बनाकर पी लेगा-जिसे यह नहीं पता कि दूध कौन-सा है और चीनी कौन-सी है!" वह थोड़ा हँस दी। तभी कुसुम करवट बदलकर उठ बैठी।

"माँ जी, आप..." उसने भी आँखें मलते हुए उसी आश्चर्य के साथ कहा। फिर झट-से कम्बल उतारकर वह बिस्तर से निकल आयी।

"आप रहने दीजिए, मैं बनाती हूँ।"

कुसुम दूसरी प्याली में चाय बनाने लगी। बनाकर प्याली उसने बचन की तरफ़ बढ़ा दी।

"मैं अभी नहाई नहीं। अभी से चाय पी लूँ?"

"पी भी ले माँ," लाली बोला, "कभी तो अपना धरम-करम छोड़ दिया कर।"

"नहीं, मैं ऐसे नहीं पीती। तुम लोग पियो।"

कुसुम प्याली लेकर अपने बिस्तर पर चली गयी। बचन लाली के पैताने बैठ गयी। लाली और कुसुम ख़ामोश चाय पीते रहे।

कमरे में हर चीज़ व्यवस्थित थी। अँगीठी पर नीले रंग का कपड़ा बिछा था जिस पर कुसुम ने सफ़ेद डोरे से कढ़ाई की थी। वहीं एक तरफ़ अखरोट की लकड़ी का बना गौतम बुद्ध का बस्ट रखा था, और दूसरी तरफ़ हाथी-दाँत की हंसों की जोड़ी। सन्दूकों पर गद्दे बिछाकर उन्हें लाल कपड़े से ढक दिया गया था। कोने में कुसुम की सिलाई की मशीन पड़ी थी, और वहाँ पास ही लाली की अधसिली कमीज के टुकड़े बँधे रखे थे। मेज़ पर छोटे-से शेल्फ़ में लाली की कुछ किताबें पड़ी थीं और वहाँ पास ही एक टेबल लैम्प रखा था। दो कमरों के बीच के पर्दे पर भी कुसुम ने अपने हाथ से कढ़ाई कर रखी थी। उधर से करवटें बदलने की आवाज़ें आ रही थीं। बच्चों की भी नींद खुल गयी थी।

लाली ने चाय पीकर प्याली मेज़ पर रख दी। कुसुम एक ख़ास नज़र से उसकी तरफ़ देख रही थी। बचन वहाँ से उठ खड़ी हुई।

"बस चल दी, माँ?" कहते-कहते लाली ने काग़ज़ उठा लिये।

"हाँ, तू अपना काम कर। मैं जाकर नहा-धो लूँ।"

"कोई ख़ास बात तो नहीं थी?"

"नहीं, बात कुछ नहीं थी। नौकर चाय ला रहा था, मैंने कहा, मैं ले जाती हूँ।"

लाली की आँखें काग़ज़ों पर झुक गयीं। कुसुम चाय के हल्के घूँट भर रही थी। बचन चलने के लिए तैयार होकर भी खड़ी रही।

"एक बात सोचती थी," वह कहने लगी।

लाली ने काग़ज़ फिर रख दिये।

"हाँ, हाँ, बता न।"

"इतने दिन हो गये, बिन्नी की चिट्ठी नहीं आयी...।"

"मैं अब उससे कोई गिला नहीं करता," लाली कुछ चिढ़े हुए स्वर में बोला, "गफ़लत की भी एक हद होती है। इस लडक़े का घरवालों से जैसे कोई रिश्ता ही नहीं है।"

बचन चुप रही।

"यहाँ रहकर बी.ए. कर लेता तो कुछ बन-बना जाता। मगर हर बात में चलना तो उसे अपनी ही मर्ज़ी से है। अब साहब ज़िन्दगी भर यहाँ-वहाँ रहेंगे और आवारागर्दी किया करेंगे।"

बचन की आँखें भर आयीं। उसने कोशिश की कि आँसू आँखों में ही सूख जाएँ, पर यह नहीं हुआ तो उसने पल्ले से आँखें पोंछ लीं।

"यह लडक़ा न जाने कब अपना होश रखना सीखेगा?...अपने शरीर की भी तो फिक्र नहीं करता। वहाँ रहकर मैं ही जो थोड़ा-बहुत देख लेती थी, सो देख लेती थी। कभी-कभी सोचती हूँ कि वहाँ उसके पास ही रहूँ, तो ठीक है।" और वह निर्णय सुनाने के भाव से लाली की तरफ़ देखने लगी। लाली गम्भीर हो गया। बोला कुछ नहीं।

"मैं कहती हूँ, मेरी आँखों के सामने रहेगा, तो मुझे पता चलता रहेगा कि क्या करता है, क्या नहीं करता...।" बचन के स्वर में थोड़ी याचना भी आ गयी।

"माँ जी का यहाँ दिल नहीं लगता," कुसुम ने प्याली रखते हुए कहा। पल भर लाली की आँखें उससे मिली रहीं।

"अभी तो माँ, तू आयी ही है," वह बोला, "पन्द्रह दिन बाद दीवाली है...।"

"मेरा बच्चों को छोडक़र जाने को मन करता है? मैं तो वैसे ही बात कर रही थी," वह फिर से चलने के लिए तैयार होकर बोली, "पता नहीं रोटी भी ठीक से खाता है या नहीं।"

कुसुम उठकर रंगी को आवाज़ देती हुई बाहर चली गयी।

"तू जाना ही चाहती है तो बात दूसरी है।" लाली के चेहरे पर कुछ उकताहट-सी आ गयी।

"नहीं, जाने की बात नहीं है, मैं तो वैसे ही कह रही थी...।"

वह बाहर की तरफ़ देखने लगी कि फिर से आँसू न टपकने लगें।

"जाने को मन हो रहा है, चली जा। नहीं, ख़ामख़ाह यहाँ चिन्ता से परेशान रहेगी।"

बचन कुछ पल ख़ामोश रही। लाली अपनी उँगलियाँ मसलता रहा।

"किस गाड़ी से चली जाऊँ?"

"रात की गाड़ी ठीक रहती है। उसमें भीड़ कम होती है।"

"तेरी तबीयत की मुझे फिक्र रहेगी...।"

"मेरी तबीयत अब ठीक ही है।"

"तू चिट्ठी लिखता रहेगा न?"

"हाँ। मैं नहीं लिख सकूँगा, तो कुसुम लिख देगी।"

"अच्छा...!"

रात को गाड़ी में उसे अच्छी जगह मिल गयी। जनाने डिब्बे में उसके अलावा दो ही और सवारियाँ थीं। कुसुम नारायण को साथ लेकर उसे छोडऩे आयी थी। लाली मुवक्किलों की वजह से नहीं आ पाया था। गाड़ी के चलने तक कुसुम उसके पास बैठकर उससे बातें करती रही। कहती रही कि दादी के पीछे बच्चे उदास हो जाएँगे, तीन-चार दिन घर सूना-सूना लगेगा, और कि वह रास्ते के लिए खाना बनवाकर साथ ले जाती, तो अच्छा था। गाड़ी ने सीटी दी, तो कुसुम प्लेटफ़ार्म पर उतर गयी।

"जाते ही चिट्ठी लिखिएगा," उसने कहा।

"तुम लाली की तबीयत का पता देती रहना," बचन ने कहा। सहसा उसे लाली के सफ़ेद बालों का ध्यान हो आया।

"रात को उसे देर-देर तक मत पढऩे देना, और उससे कहना कि दूसरे-तीसरे दिन सिर में बादाम रोगन ज़रूर डलवा लिया करे।"

कुसुम ने सिर हिला दिया। गाड़ी चलने लगी, तो उसने हाथ जोड़ दिये।

प्लेटफ़ार्म पीछे रह गया, तो बचन आकाश की तरफ़ देखने लगी। उसके मन में फिर एक शून्य-सा भरने लगा। आकाश में वही नक्षत्र चमक रहे थे। बचन स्थिर-नज़र से

उन्हें देखती रही। वह जहाँ जा रही थी, उस घर का नक़्शा धीरे-धीरे उसकी आँखों के सामने उभरने लगा। नीची छतवाला टूटा-फूटा कमरा, मादा सूअर और उसके बच्चों की हुँफ़्-हुँफ़् और कुएँ की तरफ़ से आती मोटी, भद्दी, फटी-सी आवाज़-ओ डैडाई है है ड्विलो-फैज़ल...अँधेरा, एकान्त,बिन्नी, शशि और उसके दोस्त, बहसें और दाल-रोटी के लिए उन लोगों की छीना-झपटी...।

उसकी आँखें भर आयीं। आकाश में चमकते नक्षत्र धुँधले पड़ गये।

आँखें पोंछ लीं। नक्षत्र फिर चमकने लगे।